भारतीय क्रांति में धनी किसान राजनीतिक संश्रयकारी क्यों नहीं है ?

हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में कृषि सम्बन्धी प्रश्न पर व्यापक असहमति है। अधिकांश कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन भारत में अर्द्ध सामन्ती भूमि सम्बन्धों की व्यापकता को स्वीकार ही नहीं करते, अपितु भारतीय समाज का प्रधान अंतरविरोध भी सामन्तवाद और व्यापक जनसमुदाय के बीच मानते हैं। ऐसे संगठनों का निष्कर्ष है कि भारत में उत्पादक शक्तियों के विकास में मुख्य बाधा सामन्ती उत्पादन सम्बन्ध हैं। उनका तर्क है कि साम्राज्यवाद का सामाजिक आधार सामन्तवाद होता है । चूंकि भारत में साम्राज्यवाद प्रभुत्वशाली स्थिति में है, अतः यहां सामन्तवाद व्यापक तौर पर मौजूद है, वह विशाल किसान आबादी को अपने शिकंजे में जकड़े हुए है। इसलिए उनके अनुसार सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष में सभी तरह के किसानों का (धनी किसानों सहित) रणनीतिक मोर्चा बन सकता है और बनाया जाना चाहिए । वे धनी किसानों की मौजूदा क्रांति में, जिसे वे नव जनवादी क्रांति की मंजिल निर्धारित करते हैं, एक सकारात्मक भूमिका देखते हैं। उनके कार्यक्रम के अनुसार क्रांति के लक्ष्य साम्राज्यवाद, दलाल नौकरशाह पूंजीवाद और सामंतवाद है तथा क्रांति की प्रेरक शक्तियां सर्वहारा वर्ग, किसान समुदाय (धनी किसान सहित), निम्न पूंजीपति वर्ग और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग हैं। वे आजादी के 54 वर्षों के बाद भी समाज व्यवस्था को बुनियादी तौर पर वहीं ठहरा हुआ मानते हैं, जहां वह 1947 के पहले थी। समाज में पुराने वर्गों की जगह लेने वाले नए वर्गों को वे उसी पुराने सांचे में फिट करने की हास्यास्पद कोशिश करते हुए नजर आते हैं। जबकि

> "मार्क्सवाद हमसे वर्गों के सहसम्बन्धों तथा प्रत्येक ऐतिहासिक घड़ी की ठोस विशेषताओं का अत्यन्त सटीक, वस्तुगत रूप से जांच-परख योग्य आकलन की अपेक्षा करता है।"

वे इसी मूलभूत दृष्टिकोण से ही भटक जाते हैं। ऐसे ही लोगों को लेनिन ने लकीर के फकीर बोल्शेविक के तौर पर चिन्हित किया था और कहा था कि ऐसे लोगों को

> " बोल्शेविक प्राक-क्रांतिकारी विरल वस्तुओं के पुरा लेखागार में (इसे "पुराने बोल्शेविकों" का पुरालेखागार नाम दिया जा सकता है) दे दिया जाना चाहिए।"

प्रस्तुत लेख में हम किसान आंदोलन की समस्याओं को सर्वहारा वर्ग की पार्टी के दृष्टिकोण से समझने की कोशिश करेंगे और देखेंगे कि एक समय में सामंतवाद विरोधी आंदोलन में शिरकत करने वाला धनी किसान कालान्तर में खुद शासक वर्ग का कनिष्ठ साझेदार हो चुका है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में धनी किसान को रणनीतिक तौर पर दोस्त मानने का नतीजा वस्तुतः पूंजीपति वर्ग की पैरवी बन जाती है । शोषक धनी किसानों और शोषित खेत मजदूरों और गरीब किसानों के बीच वर्ग संघर्ष को धूमिल करने वाला यह विश्लेषण वस्तुगत तौर पर वर्ग सहयोग का उपकरण बन जाता है।

सर्वहारा दृष्टिकोण और किसान आंदोलन

यहां यह भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि जब रूस में बुर्जुआ जनवादी क्रांति की मंजिल में कृषि कार्यक्रम पर लेनिन विचार करते थे तो वे हमेशा सर्वहारा वर्ग की दृष्टि से किसान आंदोलन का आंकलन कर रहे थे, उनकी समझ इस मामले में बहुत स्पष्ट थी कि सभी तरह के किसान आंदोलन का समर्थन नहीं किया जा सकता । उनका कहना था:

"निर्विवाद रूप से हमें इस आंदोलन का वहां तक समर्थन करना चाहिए और इसे गति देनी चाहिए जहां तक यह क्रांतिकारी-जनवादी आंदोलन है। साथ ही, हमें अपने सर्वहारा वर्गीय दृष्टिकोण पर दृढ़ता से डटे रहना चाहिए; हमें ग्रामीण सर्वहारा को संगठित करना चाहिए तथा इसको एक स्वतंत्र वर्ग पार्टी में लाना चाहिए; हमें इसे यह समझाना चाहिए कि इसके हित पूंजीवादी किसानों से दुश्मनाना हैं; हमें इसका आवाहन समाजवादी क्रांति के लिए लड़ने के लिए करना चाहिए, और इसे यह साफ तौर पर बता देना चाहिए कि उत्पीड़न और गरीबी से मुक्ति किसानों के विभिन्न हिस्सों को निम्न पूंजीवादी में बदलने में नहीं बल्कि समूची पूंजीवादी व्यवस्था को समाजवादी व्यवस्था से हटाने में है।"

('सर्वहारा वर्ग और किसान', लेनिन, Collected Works, Page - 231 Vol.-8, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, 1962)

वे पूंजीवादी-जनवादी क्रांति के दौर में भी सर्वहारा वर्ग की पार्टी के लक्ष्यों को क्षणमात्र के लिए ओझल नहीं होने देते थे और किसानों को निम्न पूंजीवादी मिल्की बनने में और इस मिल्की की खुशहाली में उनका कोई भ्रम नहीं था । वे लिखते हैं:

"....लेकिन लाल झंडा सर्वहारा वर्ग द्वारा धनी किसनों की मांगों के केवल समर्थन का ही परिचायक नहीं है, वह सर्वहारा वर्ग की स्वतंत्र मांगों का भी परिचायक है । वह केवल जमीन और आजादी के लिए संघर्ष का ही परिचायक नहीं है, बल्कि वह आदमी द्वारा आदमी के शोषण के खिलाफ, जन समूहों की गरीबी के खिलाफ, पूंजी के शासन के खिलाफ संघर्ष का भी परिचायक है।...."

और आगे,

"पूरी आजादी, राज्य के प्रधान समेत सभी अफसरों का चुनाव पूंजी के शासन को नहीं हटा सकता, चंद लोगों की दौलतमंदी और जन समुदायों की गरीबी का अंत नहीं कर सकता। निजी भू-स्वामित्व का पूर्ण उन्मूलन भी न पूंजी के शासन को हटा सकता है और न जन-समुदायों की गरीबी को । सारी जनता की जमीन पर भी केवल वे ही स्वाधीन रूप से खेती कर सकते हैं, जो पूंजी के मालिक हैं, केवल वे ही जिनके पास औजार हैं, मवेशी हैं, बीज भण्डार हैं, सामान्यतया धन इत्यादि है । लेकिन जिनके पास मजदूरी करने के हाथ के अलावा कुछ भी नहीं हैं, वे जनवादी जनतंत्र में भी, जमीन पर सारी जनता का स्वामित्व हो जाने पर भी अनिवार्यतः पूंजी के गुलाम बने रहेंगे। यह भ्रमात्मक विचार है कि पूंजी के समाजीकरण के बगैर जमीन का "समाजीकरण" किया जा सकता है, कि पूंजी तथा माल-उत्पादन कि कायम रहते जमीन का समतावादी उपयोग सम्भव है ।

" इस तरह वर्ग-चेतन मजदूरों का लाल झंडा पहले तो इस बात का परिचायक है कि हम पूरी आजादी और सारी जमीन के लिए किसान की लड़ाई का हर तरह समर्थन करते हैं; दूसरे वह इस बात का परिचायक है कि हम इतने पर ही नहीं रूकते, बल्कि और आगे जाते हैं। हम आजादी और जमीन के संघर्ष के अलावा समाजवाद की लड़ाई चला रहे हैं । समाजवाद की लड़ाई पूंजी के शासन के विरूद्ध लड़ाई है । उसे सबसे बढ़कर उजरती मजदूर चलाते हैं, जो सीधे-सीधे और पूरी तौर से पूंजी के आश्रित हैं। जहां तक छोटे मिल्कियों का सम्बन्ध है, वे कुछ हद तक पूंजी के मालिक हैं और अक्सर मजदूरों का शोषण करते हैं। इसलिए सभी छोटे किसान समाजवाद के लिए लड़ने वालों की कतार में नहीं खड़े होंगे, बल्कि केवल वे खड़े होंगे, जो निर्णयात्मक और चेतन ढंग से पूंजी के खिलाफ मजदूरों के पक्ष, निजी सम्पत्ति के खिलाफ सामाजिक सम्पत्ति के पक्ष में आ जायेंगे।"

('सर्वहारा वर्ग और किसान', लेनिन, संकलित रचनायें, दस खण्डों में, खण्ड - 3, पृष्ठ 219-20)

यहां लेनिन साफ तौर पर बुर्जुआ जनवादी क्रांति के दौरान किसानों की लड़ाई लड़ते समय सर्वहारा वर्ग की दृष्टि नहीं छोड़ते हैं । वे छोटी सम्पत्ति वालों की पूंजीवाद के अंदर हो रही दरिद्रता पर आंसू नहीं बहाते । बल्कि उनकी सामंतवाद विरोधी लड़ाई लड़ने में समर्थन करते हुए वे उनको पूंजी की सत्ता के विरूद्ध लड़ाई आगे ले जाने को तैयार करते हैं। इसलिए वे घोषणा करते हैं,

"अंतर्राष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग की पार्टी के तौर पर सामाजिक-जनवाद, जिसने अपने लिए दुनिया के पैमाने पर समाजवादी लक्ष्य निर्धारित किए हैं, वस्तुतः किसी भी युग के किसी भी पूंजीवादी क्रांति के साथ अपने को एकाकार नहीं करता, न तो यह अपने भविष्य को इस या उस पूंजीवादी क्रांति के इस या उस नतीजे के साथ बांध सकता है। नतीजा चाहे जो भी हो, हमें स्वतंत्र, शुद्धतः सर्वहारा वर्गीय पार्टी बने रहना चाहिए, जो मेहनतकश जन समुदाय को उनके महान समाजवादी ध्येय के लिए दृढ़तापूर्वक नेतृत्व करती हो ।"

(लेनिन, 'पहली रूसी क्रांति, 1905-7 में सामाजिक जनवाद का कृषि कार्यक्रम', पृ- 191, प्रगति प्रकाशन मास्को, द्वितीय संशोधित सं., 1977)

हमारे यहां के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में खुद को सर्वहारा वर्ग की पार्टी घोषित करने के बावजूद किसानों के साथ एकरूप करने की विजातीय प्रवृत्ति काफी प्रभावशाली है । खेत मजदूरों, गरीब किसानों और मध्यम किसानों की दरिद्रता व कंगालीकरण का रोना रोया जाता है तथा उनको छोटी सम्पत्ति वाले के रूप में तब्दील करने की कोशिश की जाती है। इस बात को भुला दिया जात है कि पूंजीवाद के अंतर्गत छोटी सम्पत्ति वालों की बदहाली अवश्यसंभावी है। इस अर्थ में, किसान समस्या को सर्वहारा वर्ग की दृष्टि से देखने के बजाय छोटे मिल्की किसान के नजरिए से देखने का भटकाव मौजूद है । यहां लेनिन के उद्धरण देने का आशय यही है कि हमें किसान समस्या को सर्वहारा दृष्टिकोण से देखना चाहिए, भले ही नव जनवादी क्रांति की मंजिल में किसान समस्या को देख रहे हों ।

कृषि में पूंजीवादी विकास के दो रास्ते

आइए, आगे बढ़े । अक्सर हमारे यहां के क्रांतिकारी कम्युनिस्ट साहित्य इन चर्चाओं से भरा रहता है कि भारत में बुर्जुआ जनवादी क्रांति नहीं हुई है, इसलिए अभी भी बुर्जुआ-जनवादी क्रांति करने की जरूरत है । ऐसे लोगों का कथन है कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति ही ग्रामीण इलाकों से सामंती बंधनों को तोड़ सकती है। इनके अनुसार, नव जनवादी क्रांति ही, जिसकी धुरी कृषि क्रांति होगी, यहां की उत्पादक शक्तियों को बंधन मुक्त कर सकती है और कृषि में पूंजीवाद के विकास का रास्ता प्रशस्त कर सकती है ।

कृषि में पूंजीवाद के विकास के संदर्भ में लेनिन को उदधृत करेंगे :

"लेकिन इस विकास के दो स्वरूप हो सकते है। भू-दासता के अवशेष या

तो जमींदारी अर्थ व्यवस्था के रूपान्तरण के परिणाम स्वरूप हो सकते हैं या जमींदारों की जागीरों के उन्मूलन के परिणाम स्वरूप, यानी कि या तो बड़ी जमींदारी अर्थव्यवस्था को शीर्ष पर रखते हुए आगे बढ़ सकता है जो क्रमशः अधिकाधिक पूंजीवादी होता जायेगा और धीरे-धीरे सामंती शोषण के तरीके को पूंजीवादी से प्रतिस्थापित कर देगा। यह किसान अर्थव्यवस्था को शीर्ष में रखकर भी आगे बढ़ सकता है, जो क्रांतिकारी तरीके से सामाजिक शरीर से सामंती जागीरों की "व्याधि" को निकाल बाहर करेगा और तब बिना उनके पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के रास्ते पर स्वतंत्र रूप से विकसित होगा।

"वस्तुगत तौर पर सम्भव पूंजीवादी विकास के इन दो रास्तों को हम क्रमशः प्रशियाई रास्ता और अमरीकी रास्ता कहेंगे। पहले वाले मामले में, सामंती भू-स्वामी अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे पूंजीवादी जुंकर भू-स्वामी अर्थव्यवस्था में विकसित होती है जो किसानों को दसियों साल तक अधम लूट और बंधन में जकड़े रहती है, जब कि उसी समय एक छोटी सी संख्या ग्रासबाउर्न ("बड़े किसानों") की उभर कर आती है। दूसरे मामले में कोई जमींदारी अर्थव्यवस्था नहीं होती या उसे क्रांति द्वारा तोड़ दिया जाता है, जो सामंती जागीरों को जब्त कर लेती है और बांट देती है। ऐसे मामले मे किसान प्रभुत्वशाली होता है, कृषि का एकमात्र अभिकर्त्ता होता है और पूंजीवादी फार्मर में विकसित होता है। पहले मामले में, विकास की मुख्य अंतर्वस्तु सामंती भू-स्वामियों की जमीन पर सामंती बंधन का गुलामी और पूंजीवादी शोषण में, जुंकरों में रूपान्तरण होती है। दूसरे मामले में पितृसत्तात्मक किसान का पूंजीवादी फार्मर में रूपान्तरण मुख्य पृष्ठभूमि होती है।"

(लेनिन, 'पहली रूसी क्रांति, 1905-1907, में सामाजिक जनवाद का कृषि कार्यक्रम', पृष्ठ - 25, प्र.प्र. मास्को, संशोधित सं. 1977)

यानि कि यह जरूरी नहीं है कि कृषि में पूंजीवादी विकास सामंतवाद-विरोधी क्रांति के जरिए ही हो। कोई भी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी परिवर्तन का पक्षधर होता है। यह तो समझ में आता है लेकिन गैर क्रांतिकारी परिवर्तनों को देखने से इन्कार करने का मतलब कठमुल्लापन के अलावा और कुछ नहीं है। यह उस जडसूत्रवाद का ही परिणाम है कि पूंजीवादी वर्ग के सत्ता में आने के पांच से ज्यादा दशकों के बाद भी हमारे कुछ कम्युनिस्ट संगठन सामंतवाद विरोधी क्रांति की रट लगाए हुए हैं। वे इसी आधार पर धनी किसान को क्रांति का रणनीतिक मित्र घोषित करते हैं। वे धनी किसानों को अस्थायी, कमजोर और ढुलमुल मित्र के तौर पर विश्लेषण करते हैं। आइए, देखा जाये कि किसान आंदोलन में जब सामंतवाद विरोधी संघर्ष सचमुच चल रहे थे, उस समय धनी किसान सहित समूचा किसान समुदाय क्यों उसमें शिरकत कर रहे थे? आखिर धनी किसानों की कौन सी मांग या हित किसान आंदोलन पूरा कर रहा था? उस समय उसकी क्रांतिकारिता क्यों थी ?

सामंतवाद विरोधी किसान आंदोलन के नारे

अपने औपनिवेशिक शासन के दौरान अंग्रेजों ने विभिन्न तरह की अर्द्ध-सामंती काश्तकारी व्यवस्था कायम की थी, इनमें प्रमुख जमींदारी, रैय्यतवारी और महालवारी थी। इसमें जमींदारी प्रथा 57% भू-भाग पर थी। जब कि रैयतवारी प्रथा में 37% तथा महालबारी प्रथा में 5 प्रतिशत भू-भाग था। इसके अतिरिक्त, राजाओं-रजवाड़ों के इलाकों में भिन्न-भिन्न तरह की काश्तकारी व्यवस्था थीं, जमींदारी प्रथा में मध्यस्थों की परत दर परत थीं, जो काश्तकारो से लगान वसूलती थीं। ये जमींदार किसानों से मनमाना लगान वसूलते थे और उसका एक हिस्सा ही सरकार को देते थे। खुदकाश्त के नाम पर व्यापक जमींनों पर कब्जा किये रहते थे। जमींदारों के इलाके में सभी काश्तकार जमींदारों के अधीन रहते थे और

उनके द्वारा भारी लगान उगाही के अलावा तरह-तरह के बैगार के शिकार होते थे। इनमें सम्पन्न काश्तकार भी होते थे। इसीलिए उस समय सभी किसानों की मांग इन जमींदारों के चंगुल से मुक्त होने की बनती थी। यही कारण है कि उस समय ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के सामाजिक आधार, इन जमींदारों के विरूद्ध यह नारा "जो जमीन को जोते बोये, वह जमीन का मालिक होये" सिर्फ सामंतवाद के विरूद्ध ही नहीं ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध युद्धघोष बन गया। 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा अपने अस्तित्व में आने के बाद से ही लगान (Rent) और मालगुजारी (Revenue) में कमी, बेदखली पर पाबंदी, कर्ज के बोझ में कमी जैसी मांगों के साथ-साथ जमींदारी प्रथा के उन्मूलन और जमीन जैसी मांगों पर किसानों को गोलबंद और संगठित कर रही थी। स्वभाविक था कि सारे किसान समुदाय के लोगों की ये मांगें बनती थी। इन संघर्षों में धनी किसान भी हिस्सा लेते थे। बिहार के मुंगेर में हुआ बकाश्त आंदोलन, जिसमें किसानों ने सिचाई की भारी दरों के विरूद्ध संघर्ष किया था। असम की सुरमा घाटी के किसानों का बेदखली और बेगार के खिलाफ संघर्ष और पंजाब में बेदखली के विरूद्ध संघर्ष हुए। द्वितीय विश्व युद्ध के तत्काल बाद समूचे देश में शक्तिशाली किसान आंदोलन जंगल की आग की तरह फैल गए। बिहार में बकाश्त आंदोलन कई क्षेत्रों में हुआ। पंजाब में लगान में कमी को लेकर आंदोलन हुए। पेप्सू में आला मल्कियित को समाप्त करने तथा भू-धारक काश्तकारों को मालिकाने का अधिकार देने के संघर्ष हुए। उत्तरप्रदेश में सीर जमींनों से बंटाईदारों की बेदखली के विरूद्ध संघर्ष हुए। केरल में पुनप्रा वायलर में जमींदारों के आंतक के खिलाफ आंदोलन बंटाईदारी को लेकर था जो सशक्त किसान आंदोलन के तौर पर विकसित हुआ। इन सारे संघर्षों में सबसे सशक्त,जुझारू और देर तक चलने वाला तेलंगाना के किसानों का हथियारबंद संघर्ष था जो जमींदारों के उत्पीड़न और निज़ाम के हथियार बंद गिरोह द्वारा काश्तकारों को तंग परेशान करने तथा धमकाने के विरूद्ध शुरू हुआ था, बाद में विकसित होकर बेगार (वेट्टी) की समाप्ति तथा गैर कानूनी वसूली बंद करने तक गया। आंध्र महासभा के भूमि कार्यक्रम में बेगार, जमींदारों को लगान और अनाज की अदायगी के खिलाफ तथा जमींदारों द्वारा गैर कानूनी तौर पर हथियाई गई जमीन पर कब्जे के लिए, उनके अनाज के भंडारों पर कब्जा करने तथा उनको जरूरतमंदों के बीच बांटने तथा जमींदारों और सूदखोरों के कागजात जलाने के मुद्दे शामिल थे।

यहां यह भी समझने की आवश्यकता है कि अखिल भारतीय किसान सभा के नेतृत्व में लड़ी गई ये सारी लड़ाइयां सामंतवाद विरोधी थी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष में इन किसान संघर्षों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इन सभी संघर्षों में धनी किसान इसलिए हिस्सेदारी कर रहा था क्योकि वह न सिर्फ जमींदारों के उत्पीड़न का शिकार था बल्कि काश्तकार के बतौर अक्सर उसके सिर पर बेदखली की नंगी तलवार लटकती रहती थी। ऊपर बताए गए अधिकांश आंदोलन में उसके हित बाकी किसानों के साथ जुड़े हुए थे। यह उस समय किसानों के अन्य हिस्से के साथ एकजुट होकर गरीब किसानों व मध्यम किसानों की ताकत के बल पर सर्वाधिक फायदे में रहता था। इन धनी किसानों के चरित्र के बारे में स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने कहा था कि ये किसानों आंदोलन का इस्तेमाल अपने फायदे के लिए उठा रहे थे। लेकिन यह एक अलग प्रश्न है, जिसे अलग से लिया जाना चाहिए। फिलहाल जो बात यहां पर प्रासंगिक है, वह यह है कि 1947 के पहले और उसके बाद के वर्षों में भी कुछ समय तक किसान आंदोलन में धनी किसान एक रणनीतिक सहयोगी की भूमिका निभा रहा था।

पूंजीवादी भूमि सुधार : भारतीय कृषि का पूंजीवादी विकास

ऊपर बताए गए किसान आंदोलनों और संघर्षों के दबाव में आजादी के बाद

पूंजीपति वर्ग की हुकूमत ने कृषि क्षेत्र में अपनी नीतियों को लागू करना शुरू किया । इसने राज्य और जमीन जोतने वाले के बीच के तमाम मध्यस्थ हितों को समाप्त किया । इसने काश्तकारी सुधार लागू किए जिसमें लगान को नियंत्रित करना, काश्त को भी सुरक्षा प्रदान करना और अंततोगत्वा मालिकाने का अधिकार देना शामिल हैं । इसने कृषि जमीनों पर हदबन्दी कानून लागू किए और अतिरिक्त जमीन के वितरण की घोषणा की और चकबन्दी लागू की ।

सत्ता में आने के बाद पूंजीपति वर्ग ने मध्यस्थों को तो समाप्त किया लेकिन उनको 637 करोड़ रूपयों का भारी मुआवजा देकर । सीर और खुदकाश्त के नाम पर अधिकांश जमीनों पर जमींदारों का कब्जा बरकरार रहा । काश्तकारी कानूनों के तहत बड़े पैमाने पर काश्तकारों की बेदखली हो गयी । बाद में उन जमीनों को दूसरों के हाथ बेंच दिया गया। हदबन्दी कानूनों में एक तो हदबन्दी की सीमायें अलग-अलग प्रांतो में बहुत ज्यादा रखी गयी। दूसरे, परिवार की परिभाषा भी इतनी ढीली रखी गयी कि जमींदारों के हाथ से अतिरिक्त जमीन नाम मात्र की निकले।इसके अतिरिक्त, बागों और बंजर, परती और अन्य जमीनों पर कब्जा बना रहा । कुल मिलाकर पूंजीपति वर्ग की हुकूमत ने जमींदारों को ही शीर्ष में रखकर उनको पूंजीवादी भू-स्वामी में तब्दील करने का मूलतः क्रमिक भूमि सुधार का रास्ता चुना। यह तो किसान आंदोलन की निरंतरता थी जो पूंजीपति वर्ग को बाध्य कर रही थी कि वह भूमि-सुधार के कार्यक्रम में किंचित परिवर्तन के साथ उन्हें लागू करें । एक समय के असामी काश्तकारों के बीच से, इस दौरान कुलकों का एक वर्ग पैदा हुआ । 60 के दशक के मध्य के बाद से "हरित क्रांति" का दौर शुरू हुआ, इससे खाद, उन्नत किस्म के बीज, बिजली, कीटनाशक दवाओं और कृषि में उन्नत किस्म के औजारों के इस्तेमाल से कृषि में पूंजीवादी विकास की प्रकिया तेज हुई । चकबन्दी ने जमीन के अलग-अलग टुकड़ों को एक जगह इकट्ठा करने में मदद की जिससे पूंजीवादी भू-स्वामियों और कुलकों को अपनी खेती को आधुनिक पूंजीवादी तरीके से संगठित करने में मदद मिली ।सहकारी समितियों, भूमि विकास बैंकों, सहकारी बैंकों और ग्रामीण विकास बैंकों के अतिरिक्त व्यापारिक बैंकों ने ग्रामीण इलाकों में पूंजीवादी विकास को और गति दी । इस पूंजीवादी विकास ने कृषक आबादी में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज की । एक तरफ, खेत मजूदर, गरीब किसान, और दूसरी तरफ कुलक-फार्मर साफ-साफ दृष्टि गोचर होने लगे । ऐसी स्थिति में, सत्तर के दशक के मध्य के बाद किसान आंदोलन में यह मुख्यतौर पर सवाल खड़ा होने लगा था कि सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष को "जमीन जोतने वाले की हो" के केन्द्रीय नारे के इर्दगिर्द कैसे खड़ा किया जाये? सामंती जमींदारों के विरूद्ध धनी किसानों को सहयोगी वर्ग के बतौर पेश तो किया जाता था लेकिन इसका कारण नहीं दिखाई पड़ता था। एक तो सामंती जमींदार थे नहीं। दूसरे, तब यह सवाल बनता यदि सामंती जमींदार हैं भी तो धनी किसान का सामंती जमींदार से ऐसा क्या अंतरविरोध का बनता है कि वे उसके विरूद्ध खेत मजदूरों व गरीब किसानों के साथ खड़े होंगे?

किसान आंदोलन का रूपान्तरण कुलक आंदोलन में

दरअसल, पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप धनी किसान, चाहे वह पूंजीवादी भू-स्वामी के रूप में हो, या चाहे कुलक के रूप में अब ग्रामीण जीवन में शीर्ष पर आ गया था। वह मुनाफे के लिए खेती कर रहा था। खेत मजदूरों का शोषण कर रहा था। वह ग्रामीण इलाकों में शासक था। यह स्थिति 70 के दशक में स्पष्ट तौर पर देखने में आने लगी थी। लेकिन जैसा कि पूंजीवादी विकास के ऐसे सुधारवादी रास्ते में होता है कि यह सामंती उत्पीड़न और प्रचलनों के तौर-तरीकों को अपने साथ लिए रहता है, इसलिए इस रास्ते में खेत

मजदूरों और गरीब किसानों को विभिन्न गैर-आर्थिक दबावों का सामना करना पड़ता रहा है। इन्हीं गैर आर्थिक दबावों और उत्पीड़न के तौर-तरीकों के चलते इन्हें सामंती सम्बन्धों का पर्याय मानने की प्रवृति कम्युनिस्ट आंदोलन में रही है। न सिर्फ इन्हें सामंती सम्बन्धों का पर्याय माना जाता रहा है बल्कि भारतीय समाज के प्रधान अंतरविरोध के तौर पर सामंतवाद और भारतीय जनता के बीच के अंतरविरोध को पेश किया जाता रहा है और आज भी पेश किया जा रहा है।

कुछ कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के समक्ष यह प्रश्न सत्तर के दशक के मध्य से ही पेश होना शुरू हो गया था कि सामंतवाद के विरूद्ध संघर्ष में धनी किसान को एक रणनीतिक मोर्चे में शामिल करने का सूत्रीकरण वास्तविकता के साथ कितना मेल खाता है ? क्योंकि उसी समय ग्रामीण इलाकों में ऐसा कोई वर्ग नहीं नजर आ रहा था जिसको कृषि के विकास में कोई दिलचस्पी न हो जो किसानों पर परजीवी के बतौर बैठा हो । पुराने जमींदारों में से कुछ लोग यदि ऐसे थे भी तो वे सामाजिक तौर पर अप्रासंगिक होते जा रहे थे। उनकी हैसियत गिर रही थी। किसानों की जमीन के लिए भूख तो थी, लेकिन अधिकांश संघर्ष या तो मजदूरों के लिए खेत मजदूरी के हो रहे थे या उत्पीड़न-अत्याचार के विरूद्ध और सामाजिक इज्जत के लिए । इन सारे संघर्षों में धनी किसान दुश्मन खेमे में था या ज्यादा सही कहा जाय तो ये सारे संघर्ष उसके विरूद्ध ही केन्द्रित थे । "जमीन जोतने वाले की हो" नारे में अब वह आकर्षण शक्ति नहीं रह गयी थी जो 50 और 60 के दशक तक में रही थी।

फिर भी सत्तर के दशक में किसानों के जो संघर्ष हुए उसके परिणामस्वरूप समूचे देश में शासक वर्ग ने नये सिरे से दुबारा भूमि सुधार लागू किये। जमीन की हदबन्दी को कम किया गया और ग्रामीण इलाके में बढ़ने वाले ध्रुवीकरण को एक हद तक मद्धिम करने की कोशिश शासक वर्ग द्वारा की गयी। जमीन का पुनर्वितरण तो किया गया लेकिन बेहद कम मात्रा में । ये सारे कदम भी ग्रामीण इलाके में ध्रुवीकरण की प्रक्रिया को नहीं रोक सके। किसानों के बीच विभेदीकरण की प्रक्रिया और तेज हुई । यह वह समय भी था जब कुलकों और धनी किसानों के आंदोलन अलग से खड़ा होना शुरू हो चुके थे । 1970 के दशक में कुलक और पूंजीवादी फार्मर अपनी मुख्य फसलों के लाभकारी मूल्यों, खेती में लगने वाले आगतो की सब्सिड़ी बढ़ाने और बिजली, पानी तथा कृषि उत्पादन में काम आने वाले अन्य उपादानों की दरों में कमी जैसे मुद्दों को लेकर गोलबंद होना शुरू हो चुके थे । यह महज स्थानीय परिघटना नहीं थी । इसका दायरा पंजाब, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, तमिलनाडु, महाराष्ट्र और कर्नाटक तक बढ़ता गया । इस कुलक आंदोलन के वे मुद्दे नहीं थे जो किसी समय किसान आंदोलन के होते थे । सामंतवाद विरोधी संघर्षों के दौरान वर्ग संघर्ष के मुद्दे थे, लेकिन इन मालिक किसान आंदोलनों के मुद्दे कृषि क्षेत्र के लिए गैर कृषि क्षेत्र से मांग पर आधारित थे । एक समय ये काश्तकार सामंतों के उत्पीड़न और शोषण का शिकार थे। अब ये जहां एक तरफ खेत मजदूरों का शोषण कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ गैर कृषि क्षेत्र से या यदि सटीक तौर पर कहा जाय तो औद्योगिक और वित्तीय क्षेत्र से अपने लिए रियायतें लेने का संघर्ष कर रहे थे । इस संघर्ष में मध्यम किसान भी इनके पीछे खड़ा है ।

आज किसान आंदोलन के नाम पर शरद जोशी, नंदुजास्वामी, टिकैत और पंजाब की भारतीय किसान यूनियन के विभिन्न घड़े जो मांग पेश कर रहे हैं वस्तुतः ये सभी कुलकों और पूंजीवादी फार्मरों की मांगें हैं और इनका किसी भी तरह से पूंजीवादी व्यवस्था से कोई बुनियादी विरोध नहीं है । इनकी लड़ाई इस व्यवस्था में और राजसत्ता में अपनी और ज्यादा दावेदारी की लड़ाई है। ग्रामीण इलाकों में यही वर्ग शासक और शोषक वर्ग है । वहां इन्हीं के विरूद्ध ग्रामीण गरीबों का संघर्ष केन्द्रित है ।

हम देखते है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के कुछ हिस्से नंदुजास्वामी और टिकैत के साथ मिल कर कभी विश्व व्यापार संगठन के विरूद्ध तो कभी अन्य कुछ मांगों पर मोर्चा बना कर संघर्ष करते हैं और तर्क देते है कि ये धनी किसानों के प्रतिनिधि हैं इसलिए ये उनके रणनीतिक मित्र है। और धनी किसानों के ये प्रतिनिधि इन कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को खुले मंच से सलाह देते है कि उन्हें ग्रामीण इलाकों में वर्ग-संघर्ष की बात छोड़ कर गांव बनाम शहर या कृषि बनाम उद्योग या भारत बनाम इंडिया की लड़ाई चलानी चाहिए । यह और कुछ न होकर पूंजीपति वर्ग का (इस मामले में कुलकों और फार्मरों का) दुमछल्ला बनना है । चाहे यह साम्राज्यवाद विरोध के नाम पर हो या अन्य किसी नाम पर ।

जहां एक तरफ देश के पैमाने पर कुलकों फार्मरों के संगठन अपने को गोलबंद कर रहे हैं और आंदोलनात्मक गतिविधियों के माध्यम से भारतीय राज्यसत्ता की नीतियों को अपने पक्ष में करने की कोशिश कर रहे हैं । वही दूसरी तरफ, कुलकों - फार्मरों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली राजनीतिक पार्टियां अस्तित्व में आयी हैं । हालांकि यह परिघटना अभी देशव्यापी शक्ल पूरे तौर पर नहीं अख्तियार कर सकी है । चरण सिंह ने लोक दल की स्थापना की थी जो कुलकों-फार्मरों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली पहली राष्ट्रीय पार्टी थी लेकिन वह देशव्यापी पैमाने पर प्रभाव फैलाने में असफल रही । क्षेत्रीय पैमाने पर पंजाब में अकाली दल, हरियाणा में ओम प्रकाश चौटाला की पार्टी भारतीय राष्ट्रीय लोक दल, उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी और बिहार में लालू प्रसाद यादव का राष्ट्रीय जनता दल इत्यादि कुलकों, ग्रामीण धनवानों और मध्यम किसानों के हितों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ये कुलकों-फार्मरों के प्रतिनिधि केन्द्र और राज्य सरकारों में नीतियों में परिवर्तन अपने पक्ष में करने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं । ये समग्रता में भारतीय पूंजी की ही सेवा में लगे हैं । क्योकि भारतीय राज्य में ये इजारेदार पूंजी के वर्चस्व को चुनौती नहीं दे सकते । इस अर्थ में ये इजारेदार औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के कनिष्ठ साझीदारों के प्रतिनिधि हैं । इन पार्टियों के अतिरिक्त, इजारेदार पूंजीपति वर्ग की पार्टियों में भी कुलकों -फार्मरों के प्रतिनिधि मौजूद हैं जो इन पार्टियों में अपने वर्ग का राजनीतिक प्रभाव बढ़ाने की कोशिश करते रहते हैं तथा खेतिहर पूंजीपति वर्ग के पक्ष में औद्योगिक पूंजीपति के बरक्स पलड़ा झुकाने की कोशिश करते रहते हैं ।

यहां इस बात की भी चर्चा कर लेने की जरूरत है कि संशोधनवादी पार्टियों द्वारा लागू किए गए भूमि सुधार कार्यक्रमों का क्या चरित्र रहा है? हालांकि इन्होंने बहुत मुस्तैदी के साथ किसान किस्म के कृषि में पूंजीवादी विकास के रास्ते को अपनाने वाला भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाया । लेकिन पूंजीवादी राज्य के अंतर्गत और नौकरशाही के भरोसे किए गए इन भूमि सुधारों ने भारी तादात में ग्रामीण सर्वहारा को छोटे से जमीन के टुकड़ों से बांध रखा है और उनके बंटाईदारी की कानूनी हैसियत प्रदान की है। पुराने खुशहाल बटाईदारों (बर्गादारों) और किसानों के बीच से एक नया कुलक वर्ग पैदा हुआ है । पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के अंतर्गत रहते हुए गरीब एवं मध्यम किसानों के निचले हिस्से को मालिक होने का भ्रम पैदा करने और जिंदगी बेहद मुफलिसी में गुजारने के लिए मजबूर होने को कतई प्रगतिशील और क्रांतिकारी कदम नहीं कहा जा सकता । लेकिन संशोधनवादी अपने इन कार्यक्रमों को लागू करने को एक विशेष उपलब्धि के तौर पर गिनाते हैं । उनके द्वारा की गयी ऐसी कार्रवाई तो समझ में आती है क्योंकि वे सर्वहारा वर्ग की विचारधारा को तिलांजलि दे चुके हैं । वे छोटे मिल्की वाले किसानों को मिली जमीनों और बरगादारों को मिले कानूनी हकों को अपनी विशेष उपलब्धि बताकर बुर्जुआ पार्टियों द्वारा शासित राज्यों से अपने को प्रगतिशील बताकर अपनी ही पीठ थपथपाते हैं ।

लेकिन जब यह काम कम्युनिस्ट क्रांतिकारी करने लगें, वे छोटी जमीन वाले किसानों के अंदर जमीन की भूख जगाने लगें और उनकी कंगाली व बदहाली पर छोटी सम्पत्ति वाले के तौर पर आंसू बहायें तो यह मार्क्सवादी दृष्टिकोण के स्थान पर निम्न पूंजीवादी दृष्टिकोण को स्थानापन्न करना है ।

लेनिन ने बहुत पहले ही 1905 में 'सामाजिक जनवाद की दो कार्यनीतियों' में कहा था,

> " संसार की अन्य सभी चीजों की तरह ही सर्वहारा वर्ग तथा किसानों के क्रांतिकारी - जनवादी अधिनायकत्व का भी अतीत और भविष्य है । उसका अतीत है एकतंत्र, भू-दासत्व, राजतंत्र तथा विशेषाधिकार । इस अतीत के विरूद्ध संघर्ष में सर्वहारा वर्ग तथा किसानों की इच्छा अनन्य हो सकती है क्योंकि इस मामले में हितों की एकता है।
>
> "उसका भविष्य है निजी मिल्कियत के खिलाफ संघर्ष, मालिक के खिलाफ उजरती मजदूरों का संघर्ष, समाजवाद के लिए संघर्ष । इस मामले में इच्छा की अनन्यता असंभव है । इस मामले में हमारा मार्ग एकतंत्र शासन से जनतंत्र की ओर नहीं, बल्कि निम्न बुर्जुआ जनवादी जनतंत्र से समाजवाद की ओर जाने वाला मार्ग है।"

लेकिन हमारे ऐसे मित्र अभी इच्छा की अनन्यता बनाए हुए हैं, वह भी बुर्जुआ जनवाद से निम्न बुर्जुआ जनवाद की ओर प्रस्थान करने के लिए ! क्या यह सर्वहारा दृष्टिकोण के स्थान पर निम्न पूंजीवादी दृष्टिकोण को अपनाना नहीं है ?

निम्न पूंजीवादी दृष्टिकोण अपनाने वाले साथी माओ के नाम का सहारा लेते हैं। वे कहते हैं कि चीन की तरह आज का भारत भी अर्द्ध - औपनिवेशिक और अर्द्ध - सामंती देश है । इनके अनुसार अर्द्ध - सामंती व्यवस्था में जमींदार वर्ग के विरूद्ध संघर्ष में धनी किसान दोस्त होता है । वे माओ के 1940 के चीन के विश्लेषण का अंधानुकरण करके इसे आज के भारत के ग्रामीण क्षेत्र में लागू करना चाहते हैं । चीन में जमींदार वर्ग उस समय था, आज भारत में नहीं है । चीन में धनी किसान एक अर्द्ध-सामंती व्यवस्था में पड़ा हुआ अलग-थलग वर्ग था । वह आज के भारत की तरह एक आधुनिक पूंजीवादी फार्मर या कुलक नहीं था । न तो उस समय की चीन की अर्थव्यवस्था एक एकीकृत पूंजीवादी अर्थव्यवस्था थी जिसका एक राष्ट्रीय बाजार हो । आज भारत में एक एकीकृत राष्ट्रीय बाजार है । आज के भारत का ग्रामीण कुलक पूंजीवादी फार्मर बाजार के लिए उत्पादन करता है और राष्ट्रीय-अंतराष्ट्रीय बाजार के उतार चढ़ावों से प्रभावित होता है । माओ ने 'चीनी क्रांति और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी' नामक लेख में धनी किसान को परिभाषित किया है :

> **"धनी किसान :** ये लोग देहातों की आबादी का लगभग 5 प्रतिशत हैं (अथवा जमींदारों समेत करीब 10 प्रतिशत हैं) और ये देहाती पूंजीपति वर्ग कहलाते हैं । चीन के अधिकांश धनी किसान अपनी जमीन का एक हिस्सा काश्त पर देते हैं, सूदखोरी करते हैं और खेत मजदूरों का भी निर्दयता से शोषण करते हैं, तथा उनके शोषण का स्वरूप अर्द्ध-सामंती है । लेकिन वे आम तौर पर खुद भी श्रम करते हैं और इस दृष्टि से किसानों में शामिल हैं । धनी किसानों की उत्पादन-प्रणाली एक निश्चित काल तक बनी रहेगी । आम तौर पर यह संभव है कि धनी किसान, किसान जन-समुदाय के साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष में अपनी कुछ शक्ति लगाये और जमींदारों के खिलाफ की जाने वाली भूमि क्रांति के संघर्ष में तटस्थ रहे । "
>
> (माओ त्से तुंग की संकलित रचनायें, खण्ड 2, पृष्ठ 569-70 वि.भा. प्र. गृ. पेकिंग, 1973)

इस धनी किसान की, जो अर्द्ध - सामंती अर्द्ध - औपनिवेशिक चीनी समाज में रह रहा था, तुलना आज के पूंजीवादी समाज के भारत के कुलक / फार्मर से करें तो न तो समाज में कोई समानता है और न उस तरह का वर्ग यहां धनी किसान के तौर पर प्रभावशाली वर्ग होते हुए सामन्तवाद से उत्पीड़ित है । चीन में तो यह वर्ग जमींदार विरोधी संघर्ष में तटस्थ रहने की आम सम्भावना लिए हुए था । लेकिन भारत में यही वर्ग ग्रामीण इलाके में शीर्ष पर है तो फिर यह कैसे मित्र हो सकता है ?

जमींदारी उन्मूलन और काश्तकारी कानूनों के लागू होने के बाद आसामी काश्तकारों के बीच से कुलकों के एक वर्ग के पैदा होने की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। हम यह बता चुके हैं कि इन कानूनों में बहुत सारे छिद्रों के कारण एक ऐसा वर्ग अस्तित्व में आया है जिसने अपने आप को सामंती भू-स्वामियों से पूंजीवादी भू-स्वामियों में तब्दील किया है, जिसकी खेती के विकास में दिलचस्पी है और जो ग्रामीण इलाके का शोषक वर्ग है। जैसे - जैसे इस वर्ग की आर्थिक शक्ति बढ़ती गयी, उसी के अनुरूप यह राजनीति में भी दखलंदाजी करने लगा । इसकी आर्थिक शक्ति का विस्तार हम कृषि के अलावा विभिन्न तरह के गैर कृषि कारोबारों में इसकी बढ़ती हुई हिस्सेदारी में देखते हैं । यातायात के साधनों में वृद्धि के साथ ही इसने बस, टैक्सी, ट्रक वगैरह में अपनी पूंजी लगायी । विभिन्न सरकारी विभागों की ठेकेदारी में इस वर्ग के लोग बड़े पैमाने पर भाग लेने लगे । ईंट के भट्ठे, राइस मिलों और कृषि यंत्रों की दुकानों से लेकर कीटनाशक दवाओं, खाद, उन्नत किस्म के बीज के कारोबार में ये उतर गए । गन्ना पेराई की छोटी मिलों तथा विभिन्न तरह के व्यवसाय में इनको देखा जा सकता है । कुलकों - फार्मरों के घरों से आने वाले लोगों को न सिर्फ कस्बों में बल्कि हर जिले के मुख्यालयों सहित प्रदेशों की राजधानियों में विभिन्न कारोबारों में देखा जा सकता है । इससे इस वर्ग की आर्थिक शक्ति की बढ़ोत्तरी का अंदाज लगाया जा सकता है ।

इसी के अनुरूप इस वर्ग की राजनीतिक क्षेत्र में दखलंदाजी की बढ़ोत्तरी को भी देखा जा सकता है । ग्राम पंचायतों, ब्लॉक पंचायतों और जिला पंचायतों में इसी वर्ग से आने वाले लोगो का बोलबाला है । ग्रामीण इलाकों के विधायकों में अधिकांश का वर्गीय आधार और पृष्ठभूमि भी यही है । सहकारी समितियों, भूमि विकास बैंकों, सहकारी बैंकों के प्रतिनिधि, निदेशक और अध्यक्ष आमतौर पर इसी वर्ग की पृष्ठभूमि के हैं । न सिर्फ ग्रामीण इलाकों में बल्कि छोटे कस्बों और जिला केन्द्रों में शिक्षण संस्थाओं के प्रबन्धन में (उनको मुनाफे और सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के साधन के तौर पर इस्तेमाल करने के लिए) इस वर्ग के लोगों का दबदबा है ।

इनकी आर्थिक शक्ति ने इन्हें राजनीतिक तौर पर प्रभावशाली बनाया और राजनीतिक प्रभाव का इस्तेमाल करके ये अपनी और अधिक आर्थिक शक्ति बढ़ाते चले गए हैं । सस्ते गल्ले की दुकानों से लेकर डीजल बिक्री केन्द्रों तथा पेट्रोल पम्पों के मालिक भी इन वर्गों से हो रहे हैं । स्थानीय नौकरशाही से इनके घनिष्ठ रिश्ते हैं ।

अगर कोई 40-50 पहले के गांव की तस्वीर को देखे तो गांव में जजमानी प्रथा व्यापक तौर पर प्रचलन में थी । जमींदारी उन्मूलन के बावजूद ग्रामीण इलाकों में पूर्व जमींदारों का वर्चस्व बरकरार था । ग्रामीण किसानों में अभी धनी किसानों की वह स्थिति नहीं थी कि वे ग्रामीण समाज के शीर्ष में होते । उस समय लोगों के बीच के आपसी रिश्ते अब नानी की कहानी की तरह लगते हैं । पूर्व जमींदारों के यहां बंधुआ मजदूर रहते थे। यह प्रक्रिया पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती थी । हर जाति (पेशे) का आदमी सालभर अपना काम करता था, बदले में उसे फसल के समय कुछ अनाज मिल जाता था । कोई नियमित मजदूरी

नहीं थी । आज उस जजमानी प्रथा का सिर्फ ढांचा ही दिखाई पड़ता है, उसकी अंतर्वस्तु गायब हो गयी है । अब हर वस्तु और सेवा बाजार के जरिए उपलब्ध है, अन्यथा दुर्लभ । तब जमींदारी इलाके में व्यापारी हिकारत की निगाह से देखा जाता था, लेकिन आज कुलक खुद व्यापारी बनते जा रहे हैं । रैयतबाड़ी इलाके में जहां व्यापारी का सूदखोर के तौर पर रैयतों पर बर्चस्व था, वहां कुलकों / फार्मरों के घरों से आने वाले लोगों ने विभिन्न किस्म के व्यापार पर अपनी दखल बढ़ा दी है ।

ग्रामीण इलाकों के इन परिवर्तनों ने जहां जमींदार नाम के सामंती तत्व को पूंजीवादी भू-स्वामी में बदलने के लिए बाध्य किया है (अन्यथा वे प्रभावहीन हो गये है), वहीं कुलक, फार्मर ग्रामीण समाज के शीर्ष पर पहुंच गये है । ग्रामीण इलाके में आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक तौर पर इसी वर्ग का वर्चस्व है । स्थानीय प्रशासन से लेकर जिले और प्रांत की राजधानियों में प्रभावशाली वर्ग के तौर पर यह मौजूद है । पूंजीवादी व्यवस्था से फलने-फुलने व लाभ उठाने वाला यह वर्ग इस व्यवस्था के खिलाफ क्यों खड़ा होगा ? कोई भी वर्ग अपने वर्ग हितों के विरूद्ध क्यों जायेगा ? कुलकों/फार्मरों का वर्ग न सिर्फ शोषक वर्ग है बल्कि ग्रामीण इलाके का शासक वर्ग भी है और पूंजीवादी राज्यसत्ता में कनिष्ठ साझीदार है । ऐसी हालत में यह वर्ग अपनी ही राज्यसत्ता के विरूद्ध क्यों खड़ा होगा ? चीन की नव-जनवादी क्रांति की अंधी नकल करने वाले कामरेड इस जमीनी सच्चाई को नहीं देख - समझ रहे हैं ।

तब सवाल यह खड़ा होता है कि धनी किसान साम्राज्यावाद-विरोधी संघर्ष में क्या रणनीतिक तौर पर संश्रयकारी हो सकता है ? इस प्रश्न का हां में उत्तर देने वाले कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन उदाहरण के तौर पर नंदुजास्वामी द्वारा विश्व व्यापार संगठन तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विरोध करने को पेश करते हैं । लेकिन क्या यह एक तथ्य नहीं है कि शरद जोशी का शेतकारी संगठन इस बात का खुला समर्थन करता है कि फार्मरों के लिए विश्व बाजार के दरवाजे खोले जाने चाहिए ? शरद जोशी न सिर्फ विश्व बाजार के दरवाजे खोले जाने की हिमायत करते हैं बल्कि सब्सिड़ी को समाप्त करने की भी बात करते हैं । यहां यह ध्यान में रखने की बात है कि शेतकारी संगठन का कार्यक्षेत्र वह इलाका है जहां नकदी फसलें ज्यादा उगाई जाती हैं और शरद जोशी कुलकों / फार्मरों के व्यावसायिक हितों को ज्यादा दूरगामी तौर पर देखते समझते हैं। अन्य मुद्दों के अलावा, पंजाब की भारतीय किसान यूनियन में इस मुद्दे पर भी फूट पड़ी थी, जिस फूट में भूपिन्दर सिंह मान और बलबीर सिंह राजेवाल के प्रभावशाली गुट ने शरद जोशी की लाइन का समर्थन किया । भूपिन्दर सिंह मान पंजाब के फार्मरों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले वे शख्स हैं जिनकी अगुवाई में पंजाब के फार्मरों ने पंजाब किसान खेती उद्योग को स्थापित किया गया । उद्योग ने खादों, कीटनाशक दवाओं, इत्यादि के थोक और फुटकर बिक्री केन्द्र जगह-जगह पर खोल रखे हैं ।

यह बात सही है कि नंदुजास्वामी के विरोध का साथ देने वालों में महेन्द्र सिंह टिकैत और पंजाब के भारतीय किसान यूनियन का अजमेर सिंह लखोवाल और मंजीत सिंह कादियान के नेतृत्व वाला गुट था । लेकिन जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि नकदी फसलों को विश्व बाजार तक पहुचने में जहां शरद जोशी जैसे फार्मरों को फायदा देखते हैं वही परंपरागत खेती वाले क्षेत्रों और छोटे कुलकों के प्रतिनिधि इसमें नुकसान देख रहे हैं। हो सकता है कि नंदुजास्वामी का लोहियावादी अतीत भी इस विरोध का एक कारण रहा हो । लेकिन विश्व व्यापार संगठन व अन्य साम्राज्यवादियों के भारतीय कृषि में दखलंदाजी से सारे ग्रामीण वर्गों पर एक जैसा प्रभाव नहीं पड़ेगा । यदि पंजाब में बहुराष्ट्रीय कम्पनी पेप्सी वहां के किसानों को टमाटर की खेती करने के फायदें बताती है तो बड़े पैमाने पर पंजाब के कुलक / फार्मर टमाटर की खेती शुरू कर देते हैं । यह स्वाभाविक है । बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और साम्राज्यवादियों को मुनाफा चाहिए और कुलकों - फार्मरों को भी मुनाफा चाहिए। इन दोनों के साझे हित इसी में है कि नगदी फसलों के उन्नत बीज आयें और उनका

थोक खरीददार मिल जाये । यहां यह भी ध्यान में रखने की बात है कि आज साम्राज्यवाद जो भी घुसपैठ यहां करता है वह भारतीय पूंजीवाद के माध्यम से करता है । यहां यह भी ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि साम्राज्यवाद और भारतीय पूंजीवाद के बीच असमान रिश्ते हैं जिसमें साम्राज्यवादी पूंजी के पास अधिशेष का ज्यादा भाग चला जाता है । वैसे भी भारतीय पूंजी में बड़ी पूंजी और छोटी पूंजी के बीच तथा औद्योगिक पूंजी और कृषि पूंजी के बीच असमान रिश्ते हैं जो कृषि पूंजी के ज्यादा प्रतिकूल पड़ते हैं । इसके अतिरिक्त, कृषि क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दखल ने फिलहाल एक ऐसी संक्रमणकालीन परिस्थिति को जन्म दिया है जो परम्परागत फसल उगाने वाले तथा एक हदतक नगदी फसल उगाने वाले धनी किसानों और कुलकों को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की घुसपैठ के विरूद्ध तात्कालिक तौरपर खड़ा कर देती है । लेकिन यह संक्रमणकालीन परिस्थिति अस्थायी है । इसलिए भारतीय कृषिगत मालों के लिए विश्व बाजार खुलने से और यहां कृषि की नगदी फसलों के थोक खरीददार के तौर पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के आगमन से कुलकों / फार्मरों को कुल मिलाकर लम्बे दौर में लाभ ही होगा । इसलिए कुलकों / फार्मरों के वर्ग से यह उम्मीद करना कि वे साम्राज्यवाद का विरोध करेंगे, ख्याली पुलाव पकाने के सिवाय और कुछ नहीं है । अगर यह सिर्फ ख्याली पुलाव पकाना ही होता तो भी साधारण गलती होती लेकिन यह ख्याली पुलाव मौजूदा दौर में भारतीय क्रांति के एक दुश्मन वर्ग से दोस्त के तौर पर व्यवहार करने की ओर ले जाता है जो सैद्धान्तिक तौर पर गलत और व्यवहारिक तौर पर क्रांति के लिए बेहद घातक है ।

बुर्जुआ जनवादी क्रांति के बचे-खुचे कार्यभार और समाजवादी क्रांति

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि क्रमिक विकास के पूंजीवादी रास्ते में किसानों पर शोषण व दमन के पुराने तरीके लम्बे समय तक चलते रहते हैं और धीरे-धीरे वे अपनी पूंजीवादी अंतर्वस्तु ग्रहण करते जाते हैं । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि पूंजीवादी जनवादी क्रांति के सारे कार्यभार यदि न भी हल हुए हों तो भी यदि वह क्रांति आगे बढ़ चुकी होती है, यदि क्रांति की मंजिल बदल गयी हो, यदि क्रांति की मंजिल पूंजीवाद विरोधी सर्वहारा समाजवादी क्रांति की हो जाय तो क्रांति के रणनीतिक नारे सिर्फ इस लिए पुराने पूंजीवादी जनवादी क्रांति के दौर के नहीं रह जाते क्योंकि उस समय तक पूंजीवादी जनवादी क्रांति के कुछ कार्यभार सम्पन्न नहीं किये गये हैं । हमारे कुछ बिरादर संगठन तो अक्टूबर क्रांति को भी पूंजीवादी-जनवादी क्रांति सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं । इसी तरह सोचने वाले कुछ लोग बोल्शेविक पार्टी में भी थे, जो अक्टूबर क्रांति के समाजवादी चरित्र के होने पर प्रश्न चिन्ह लगा रहे थे । उनका जवाब देते हुए स्तालिन ने कहा था :

> "ऐसा हो सकता है कि क्रांति की प्रक्रिया में पार्टी का बुनियादी नारा पहले ही पुराने वर्गों या पुराने वर्ग की सत्ता को उखाड़ फेंकने की ओर ले गया हो, लेकिन क्रांति की अत्यावश्यक मांगें, जो उस नारे से निकलती हैं, न हासिल की गयी हों, या उनकी प्राप्ति समय के एक समूचे काल में छितराई हुई हों, या उनकी प्राप्ति के लिए एक नयी क्रांति की आवश्यकता हो, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि बुनियादी नारा गलत था । इस प्रकार, उदाहरण के लिए 1917 की फरवरी क्रांति ने जारशाही और जमींदारों को उखाड़ फेंका लेकिन जमींदारों की जमीन इत्यादि को जब्त करने की ओर नहीं गयी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि क्रांति की पहली मंजिल के दौरान हमारा बुनियादी नारा गलत था ।
>
> " या एक अन्य उदाहरण, अक्टूबर क्रांति ने पूंजीपति वर्ग को उखाड़ फेंका और सत्ता सर्वहारा वर्ग को हस्तान्तरित कर दी, लेकिन यह तुरन्त ही (अ) समान्य रूप से पूंजीवादी क्रांति को पूरा करने की ओर और (ब) विशेष रूप से देहातों में कुलकों को अलग-थलग करने की ओर नहीं गयी – ये सब समय के एक पूरे काल में फैले हुए थे, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि क्रांति की दूसरी मंजिल का हमारा बुनियादी नारा- " गरीब किसानों के साथ, शहरों और गावों में पूंजीवाद के विरूद्ध, मध्यम किसानों को तटस्थ करते हुए, सर्वहारा वर्ग की सत्ता के लिए " – गलत था ।
>
> "परिणाम स्वरूप, पार्टी के बुनियादी नारे के सवाल को, उस नारे से निकली हुई विशिष्ट मांगों को प्राप्त करने के समय और रूपों के सवाल से गड्डमड्ड नहीं करना चाहिए।
>
> "इसीलिए हमारी पार्टी के रणनीतिक नारों का किसी विशेषकाल के क्रांतिकारी आंदोलन की तात्कालिक सफलताओं और पराजयों के दृष्टिकोण से मूल्यांकन नही करना चाहिए, उनका मूल्यांकन उन नारों से उद्‌भूत किन्ही विशिष्ट मांगों को प्राप्त करने के समय या रूपों के दृष्टिकोण से तो और भी नहीं करना चाहिए । पार्टी के रणनीतिक नारों का मूल्यांकन वर्गशक्तियों के मार्क्सवादी विश्लेषण के और क्रांति की विजय के लिए नए वर्ग के हाथों में सत्ता के केन्द्रीकरण के लिए संघर्ष के मोर्चे पर क्रांतिकारी शक्तियों के सही विन्यास के दृष्टिकोण से ही किया जा सकता है ।"
> (जे.वी. स्टालिन, वर्क्स, खण्ड 9, पृ. 208-209 'यान स्काई को जवाब', 'किसान सवाल पर पार्टी के तीन बुनियादी नारे')

जैसा कि इस उद्‌हरण से स्पष्ट है कि पार्टी के बुनियादी रणनीतिक नारे को उस नारे से निकली हुई विशिष्ट मांगों को प्राप्त करने के समय और रूपों के सवाल से गड्डमड्ड नहीं करना चाहिए। हमारे देश में "जमीन जोतने वाले की हो" का रणनीतिक नारा जो एक समय सामंतवाद के विरूद्ध किसान समुदाय के संघर्षों का मुख्य आकर्षण था, वह पूंजीवादी भूमि सुधारों और कृषि में पूंजीवाद के विकास के कारण कालान्तर में अप्रासंगिक हो गया है, इसके बावजूद उसी रणनीतिक नारे को दुहराया जा रहा है तो इसका मतलब यह है कि रणनीतिक नारे के सम्बन्ध में समझ गलत है । यह सही है कि रास्ते पर चलते हुए और किसान आंदोलन के दबाव में यहां के पूंजीपति वर्ग ने भूमि सुधार कार्यक्रम अपनाये । ऐसे में यदि मजदूर वर्ग की पार्टी ताकतवर आंदोलन की अगुवाई कर रही होती तो ये भूमि सुधार और तेज गति से लागू होते । लेकिन ऐसा हुआ नहीं । एक लम्बी पीड़ादायी प्रक्रिया से ये भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किए गए । इसमें किसानों की बड़े पैमाने पर बेदखली हुई । जमींदारों ने जमीनों पर कब्जे किए । इन सबके बावजूद आधे-अधूरे ढंग से ही सही, भूमि सुधार कार्यक्रम पूंजीपति वर्ग ने लागू किए । इसका एक नतीजा तो साफ देखा जा सकता है, वह यह कि कृषि सम्बन्धों में पूंजी का बोलबाला हो चुका है । सामंती उत्पीड़न और चलन को तथा उत्पादन सम्बन्धों में मौजूद सामंती अवशेषों को समाप्त करना है तो कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को अपने बुनियादी रणनीतिक नारे को बदलना होगा । मौजूदा दौर में बुनियादी रणनीतिक नारा श्रम और पूंजी के अंतरविरोध से तय होगा और यह चलते-चलते उपोत्पाद के बतौर सामंती अवशेषों का समाप्त करने के कार्यभारों को भी सम्पन्न कर देगा । ऐसा भी हो सकता है कि कृषि में पूंजीवादी विकास जिस भी गति से हो रहा है वह एक लम्बी अवधि में सामंती अवशेषों को भी समाप्त कर दे । लेकिन तब भी क्या हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी मित्र उसी पुराने नारे " जमीन जोतने वाले की हो " की रट लगाए रहेंगे । वे इस कदर पूंजीवाद की शरीफ तस्वीर पेश करते है कि लगता है वे तब भी उसे पूंजीवाद नहीं बल्कि सामंतवाद ही कहेंगे । ऐसे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी मित्रों को, स्तॉलीपिन सुधारों के बारे में हम लेनिन को उद्‌धृत कर रहे हैं; जिस पर उन्हें गौर करना चाहिये,

> " आगे बढ़ें ! क्या होगा यदि जन समुदाय के संघर्ष के बावजूद प्रशियाई रास्ते पर स्तॉलीपिन की नीति लम्बे समय तक सफलतापूर्वक जारी रहती है ? तब रूस की कृषि व्यवस्था पूर्णतया पूंजीवादी हो जायेगी, बड़े किसान लगभग सारी एलॉटेमेण्ट जमीन पर कब्जा कर लेंगे, कृषि पूंजीवादी हो जायेगी, और पूंजीवाद के अंतर्गत कृषि प्रश्न का कोई भी "समाधान"- अमूल परिवर्तनवादी या गैर - आमूल परिवर्तनवादी – सम्भव नहीं रह जायेगा। तब मार्क्सवादी, जो अपने प्रति ईमानदार हैं, स्पष्ट तौर पर और खुले तौर पर तमाम "कृषि कार्यक्रम" को पूर्णतया कूड़े के ढेर पर फेंक देंगे और जन समुदाय से कहेंगे : रूस को जुंकर किस्म का नहीं बल्कि अमरीकी पूंजीवाद देने के लिए मजदूरों ने वह सब किया जो वे कर सकते थे। सर्वहारा वर्ग की सामाजिक क्रांति में शामिल होने के लिए मजदूर अब आपका आहवान करते हैं, क्योंकि स्तॉलीपिन भावना में कृषि सवाल के 'समाधान' के **पश्चात** किसान समुदाय के जीवन की आर्थिक दशाओं में **गम्भीर परिवर्तन लाने में समर्थ और कोई दूसरी क्रांति नहीं हो सकती ।"**
>
> (लेनिन, On the Beaten Track, खण्ड 15, पृ. 45, Collected works, अनुवाद हमारा व जोर मूल में अंग्रेजी संस्करण प्रो. प., मास्को, 1973)

लेनिन का मतलब स्पष्ट है । यानी जब तक सामंती जागीरों के विरूद्ध संघर्ष की भौतिक जमीन मौजूद रहेगी, तब तक रूस में कृषि कार्यक्रम का मतलब रहेगा। जब कृषि का पूंजीवादी रूपान्तरण मुख्यतया पूर्ण हो चुका हो, तब किसी मार्क्सवादी द्वारा कृषि कार्यक्रम पेश करने की हिमायत करना बिल्कुल बेतुकी बात होगी । चाहे यह रूपान्तरण प्रशियाई रास्ते पर हुआ हो या चाहे अमरीकी रास्ते से । इससे मूल बात पर कोई फर्क नहीं पड़ता । हमारे देश में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच यह प्रभावी चिंतन मौजूद है, चूंकि भूमि सुधार कार्यक्रम क्रांतिकारी तरीके से लागू नहीं किए गए, इसलिए सामंतवाद मूलतः बरकरार है और इसी आधार पर सामंतवाद विरोधी संघर्षों में धनी किसान की सहयोगी भूमिका को भी चिन्हित किया जाता है । और यह सब माओ की नव जनवादी क्रांति की अवधारणा का अन्धानुकरण करके किया जाता है । जबकि माओं बार-बार जोर देकर कहते हैं कि चीनी समाज अर्द्ध - औपनिवेशिक और अर्द्ध - सामंती समाज है, उक्त समाज में सामंती बंधनों को तोड़कर पूंजीवादी विकास के लिए रास्ता प्रशस्त करने में नव - जनवादी क्रांति की भूमिका है । चूंकि पूंजीवादी क्रांति के कार्य को कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में होना था, इसलिए सीमित दायरे में पूंजीवादी विकास की इजाजत कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व दे सकता है । वस्तुतः वर्गीय कतारबंदी की दृष्टि से लेनिन की रचना 'सामाजिक जनवाद की दो कार्यनीतियां' और माओ की 'नव जनवाद के बारे में' के बीच, विशेष तौर पर कृषि क्षेत्र में, कोई अंतर नहीं है । इसका कारण स्पष्ट है । दोनों पूंजीवादी जनवादी क्रांतियां थीं । दोनों के कृषि कार्यक्रम में धनी किसान (रूस में कुलक) ढुलमुल दोस्त थे। दोनों कृषि क्षेत्र में पूंजीवादी विकास के रास्ते में बंधनों से मुक्ति के लिए लक्षित थीं । दोनों की स्थितियों में जो मूलभूत फर्क था, वह यह कि एक खुद साम्राज्यवादी देश था और दूसरा अर्द्ध-औपनिवेशिक या बाद में कुछ क्षेत्रों में औपनिवेशिक था । यह मूल फर्क इस पर प्रभाव डालता था कि चीन में सामंतवाद को बरकरार रखने में साम्राज्यवाद की भूमिका थी । लेकिन रूस में कोई ऐसी साम्राज्यवादी शक्ति नहीं थी जो सामाजिक आधार के बतौर सामन्तवाद को कायम रखने में भूमिका निभाती थी । इसलिए माओ की "नव जनवाद के बारे मे" की अवधारणा को मौजूदा भारत में लागू करने का मतलब खुद माओ के शब्दों में " जूते के हिसाब से पैर को काटना" होगा ।

ग्रामीण इलाकों में वर्ग-संघर्ष

कुलकों और फार्मरों के नेतृत्व में चलने वाले किसान आंदोलन आम तौर पर राज्य से रियायत पाने के लिए चलाये जा रहे हैं और अक्सर इन आंदोलनों में समूचे किसान

समुदाय को शामिल करने की कोशिश होती है । ऐसे आंदोलन ग्रामीण इलाकों में वर्गों की मौजूदगी और उनके बीच के वर्ग संघर्ष को नजर अंदाज करते हैं । वे खेत मजदूरों से लेकर गरीब किसानों और मध्यम किसानों तक को अपने दायरे में लाने की कोशिश करते हैं । ये आंदोलन वर्ग सहयोग के जरिए कुलकों और फार्मरों के स्वार्थों को सिद्ध करते हैं । जब कि खेत मजदूरों और गरीब किसानों को इनकी बुनियादी मांगों से कुछ भी लेना-देना नहीं होता । जहां धनी किसानों (कुलकों/फार्मरों) की मुख्य मांगो - उपज की लाभकारी मूल्यों, खाद्यान्नों की बिक्री के लिए क्षेत्रीय प्रतिबंध हटाने, गन्ना, दूध, कपास की ज्यादा कीमतों, बिजली और पानी की दरों में कटौती, खाद, कीटनाशक दवाओं इत्यादि में सब्सिड़ी और संस्थागत कर्जे - सुविधायें उपलब्ध कराने की होती है; वहीं खेत मजदूरों और गरीब किसानों की मुख्य मांग मजदूरी में वृद्धि और ग्रामीण इलाकों में रोजगार की सुरक्षा की गारण्टी की होती है । खेत मजदूर और गरीब किसान खाधान्नों को मुख्यतया खरीदते हैं इसलिए खाधान्नों की कीमतों में बढ़ोत्तरी उनके हितों के विरूद्ध जाती है । यहां धनी किसानों और खेत मजदूरों व गरीब किसानों के बीच सीधे वर्ग विरोध मौजूद है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का यह काम नहीं है कि वे इस वर्ग संघर्ष को धूमिल करें और धनी किसानों के साथ एकता कायम करने के लिए वर्ग - सहयोग की कार्यदिशा अपनायें । हमारे ऐसे मित्र जो धनी किसानों को रणनीतिक दोस्त के तौर पर चित्रित कर रहे हैं वे वस्तुतः सर्वहारा वर्ग की पक्षधरता का ही परित्याग कर रहे हैं ।

जहां तक मध्यम किसानों का ताल्लुक है, वह मालिक होने के नाते धनी किसान के साथ खड़ा है और वह तब तक इस स्थिति में रहेगा जब तक कि क्रांति की निर्णायक घड़ी नहीं आ जाती और उस निर्णायक घड़ी में सर्वहारा वर्ग की सत्ता मजबूत होते नहीं दिखायी देती । यह सर्वहारा वर्ग की सत्ता के मजबूत होते जाने के साथ ही क्रांति के पक्ष में खड़ा होगा । लेकिन इसके ढुलमुल रवैये के बावजूद इसे सर्वहारा वर्ग के दुश्मन के तौर पर नहीं चित्रित किया जा सकता । जहां यह एक तरफ मालिक किसान है, खेत मजदूरों का एक हद तक शोषण भी करता है वहीं दूसरी तरफ यह मेहनतकश भी है ।मेहनतकश होने के बतौर वह सर्वहारा वर्ग का रणनीतिक मित्र है ।

कृषि सहित समूचे भारतीय समाज में पूंजी और श्रम के बीच अंतरविरोध प्रधान हो गया है । ग्रामीण इलाके का शोषक और शासक होने तथा जमीन और पूंजी का मालिक होने के चलते धनी किसान किसी भी तरह भारतीय क्रांति का रणनीतिक दोस्त नहीं हो सकता । अब कृषि क्षेत्र में खेत मजदूरों और गरीब किसानों की दृढ़ एकता के आधार पर सर्वहारा वर्ग समाजवादी क्रांति को सम्पन्न करेगा ।

हमारे देश में धनी किसानों के साथ रणनीतिक संश्रय कायम करने का विश्लेषण करके नतीजे निकालने वाले कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन जहां एक तरफ सर्वहारा दृष्टिकोण से भटकाव के शिकार हैं वहीं उनमें कृषि में पूंजीवादी विकास के बारे में ऐतिहासिक समझ का भी अभाव है । वहीं वे वास्तविक जीवन में हो रहे परिवर्तनों से आंखें बंद किए हुए हैं और इसका समाहार नहीं कर रहे हैं कि क्यों एक समय के काश्तकार जो जमींदार विरोधी संघर्ष में बढ़चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे, मौजूदा समय में कृषि क्षेत्र में कुलकों के तौर पर विकसित हो गए हैं और उनके बीच से कम्युनिस्ट आंदोलन का प्रभाव समाप्त हो गया है। ऐसे मित्र यह भी समझने में असमर्थ हैं कि समाजवादी क्रांति बचे खुचे जनवादी कार्यभारों को चलते-चलते उपोत्पाद के तौर पर सम्पन्न कर देती है । इस प्रकार धनी किसानों को रणनीतिक दोस्त बताकर ऐसे मित्र वस्तुतः जड़सूत्रवाद के चलते सर्वहारा वर्ग की विचारधारा को निम्न पूंजीवादी विचारधारा में बदल देते हैं ।

❑ ❑ ❑